**ओ३म्**

**‘पाखण्ड खण्डिनी पताका, सद्धर्म प्रचार और महर्षि दयानन्द’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 किसी भी विषय में सत्य का निर्धारण करने पर सत्य वह होता है जो तर्क व युक्ति के आधार पर सिद्ध हो। दो संख्याओं 2 व 3 का योग 5 होता है। तर्क व युक्ति से यही उत्तर सत्य सिद्ध होता है। अतः 2 व 3 का योग 4 या 6 अथवा अन्य कुछ कहा जाये तो वह असत्य की कोटि में आता है। धार्मिक मान्यताओं व सिद्धान्तों की दृष्टि से भी एक विषय में सत्य मान्यता व सिद्धान्त केवल एक ही होता है। इसका प्रथम ज्ञान परमात्मा ने स्वयं ही सृष्टि के आरम्भ में वेदों के द्वारा आदि ऋषियों को कराया था। आज भी सम्पूर्ण वेद अपने मूल स्वरूप सहित संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में भाष्यों के रूप में उपलब्ध है। इनके द्वारा सत्य धर्म, मत, मान्यताओं व सिद्धान्तों का निर्धारण किया जा सकता है। धर्म का सम्बन्ध ईश्वर व आत्मा के ज्ञान व मनुष्य द्वारा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना से भी जुड़ा हुआ है। अतः ईश्वर, जीव व उपासना से जुड़ी सभी मान्यतायें व सिद्धान्त जो परस्पर विरोधी व युक्ति प्रमाणों के विरुद्ध हैं, सत्य नहीं कहे जा सकते। सत्य की विस्मृति से ही अज्ञान उत्पन्न होता है जो समय के साथ बढ़ता रहता है। महाभारत युद्ध के बाद वेदों के विलुप्त हो जाने व अल्प ज्ञानी लोगों द्वारा वेदों के अर्थ न समझने के कारण भारत व विश्व के सभी देशों में अज्ञान व पाखण्ड में वृद्धि होती रही।

 महर्षि दयानन्द ने सत्य ज्ञान की खोज की। उन्होंने भारत के सभी ज्ञानी गुरूओं से धर्म, योग व उपासना आदि का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने संस्कृत का व्याकरण व अन्य सभी आर्ष व अनार्ष ग्रन्थों को पढ़ कर उनका मन्थन कर अपने विद्यागुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती की कृपा से सत्य व असत्य के भेद व अन्तर को जाना था। इसके साथ उन्होंने गुरू की प्रेरणा व आज्ञा तथा स्वयं के विवेक से समस्त मानवता के हित व कल्याण के लिए पाखण्ड व असत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों का खण्डन कर सत्य वैदिक मान्यताओं की स्थापना का संकल्प किया था जिसका उन्होंने अपनी अन्तिम श्वांस तक पालन किया। स्वामी जी ने सन् 1863 तक गुरु विरजानन्द की मथुरा स्थित कुटिया वा गुरुकुल में अध्ययन कर इसके बाद सत्य धर्म वैदिक मत का प्रचार आरम्भ किया था। आगरा व ग्वालियर आदि अनेक स्थानों पर प्रचार करते हुए वह सन् 1867 के हरिद्वार के कुम्भ मेले में धर्म प्रचार करने के उद्देश्य से आये थे। इसका कारण था कि कुम्भ के मेले में हिन्दू स्त्री-पुरुष और साधु लाखों की संख्या में इकट्ठे होते हैं। यह लेाग समझते हैं कि कुम्भ के मेले पर गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं और मनुष्य को दुःखों व जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है। हरिद्वार में उन्होंने देखा कि साधु और पण्डे धर्म का उपदेश देकर लोगों को सीधे रास्ते पर लाने के स्थान पर उन्हें पाखण्ड की शिक्षा देकर लूट रह हैं। उन्होंने पाया कि संसार सत्य धर्म पर चलने के स्थान पर अज्ञान के गहरे गड्ढ़े में गिर रहा है। जिसे हर की पैड़ी कहा जाता है, वह हर की पैड़ी न होकर हाड़ की पैड़ी बन रही है। गंगा में डुबकी लगाने से सब पाप दूर हो जाते है, इस मिथ्या विश्वास से लोग बिना सोचे विचारे अन्धाधुन्ध गंगा नदी में डुबकियां लगा रहे थे।

 हरिद्वार में इन दृश्यों को देखकर स्वामी दयानन्द जी को गहरी चोट लगी। उन्होंने पाया कि इन कृत्यों से लोग दुःखों से छूटने के स्थान पर दुःखों के सागर में डूब रहे हैं। अतः उन्होंने साधुओं और पण्डों के इस पाखण्ड की पोल खोलने का निर्णय लिया। इसके बाद एक दिन यात्रियों ने देखा कि हरिद्वार से ऋषिकेश को जाने वाली सड़क पर वहां एक स्थान पर स्वामी दयानन्द ने पाखण्ड-खण्डिनी पताका गाड़ दी है। वह वहां गरज-गरज कर उपदेश दे रहे हैं। वह अपने उपदेशों में साधुओं और पण्डों की करतूतें दिखला कर झूठे गंगा-महात्म्य की धज्जियां उड़ा रह हैं। स्वामी दयानन्द की इस गरजना से मेले में भारी हलचल मच गई। आज तक लोगों ने किसी संन्यासी को श्राद्ध, मूर्ति-पूजा, अवतार और गंगा-स्नान से मुक्ति मिलने का खण्डन करते हुए तथा पुराणों को झूठा कहते नहीं सुना था। सहस्त्र्रों की संख्या में लोग उनका क्रान्तिकारी उपदेश सुनने आने लगे। स्वामीजी सबसे यही कहते थे कि हर की पैड़ी पर नहाने से पाप नहीं धुलते। वेद की शिक्षा पर चलो। अच्छे काम करो। इसी से सुख और मोक्ष मिलेगा। धर्म ग्रन्थों का पढ़ना-सुनना और सच्चे धर्मात्माओं की संगति ही सच्चा तीर्थ होती है।

 आने को तो स्वामी दयानन्द जी के सत्संग व प्रवचन में सहस्त्रों लोग उपदेश सुनने आते थे परन्तु वे केवल सुनकर चले जाते, उन पर उनके उपदेशों का प्रभाव दिखाई नहीं देता था। यह देख कर स्वामीजी को गहरी निराशा हुई। उन्होंने विचार किया कि मेरे तप व त्याग में कहीं कुछ कमी है जिस कारण से उनकी बात का लोगों पर असर नहीं हो रहा है। बस उन्होंने निर्णय किया कि वह अब आगे प्रचार न कर मौन रहकर तपस्या करेंगे। उन्होंने अपने सब वस्त्र उतार कर फेंक दिये। महाभाष्य की एक कापी, सोने की एक मुहर और मलमल का एक थान अपने गुरूदेव स्वामी विरजानन्द जी के लिए मथुरा भिजवा दिया। श्री कैलासपर्वत नाम के एक साधु ने स्वामी से पूछा कि महाराज आप यह क्या कर रहे हैं? स्वामी जी ने उन्हें उत्तर दिया कि जब तक अपनी आवश्यकताओं को कम से कम न किया जाये, पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती और कार्य में सफलता भी नहीं हो सकती। कैलास पर्वत को उन्होंने कहा कि वह सत्य वैदिक धर्म के विरोधी सभी असत्य मत, पन्थों व सम्प्रदायों का खण्डन कर सत्य को स्थापित करना चाहते हैं। इसके लिए वह सांसारिक आवश्यकताओं और सुख-दुःख से ऊपर उठना चाहते हैं। इसके बाद स्वामीजी ने पुस्तकें आदि छोड़कर अपने सारे शरीर पर राख रमा ली। अपने तन पर केवल एक कौपीन रख कर मौन रहने का व्रत ले लिया। जो वेदों का विद्वान शेर की तरह किसी समय लाखों के समूह में गरजता था, जिसकी गरज को सुनकर झूठे मतों और पंथों के दिल दहल जाते थे, वह अब मौन रहकर अपनी कुटी में बैठ गया। बातचीत करना पूरी तरह से बन्द हो गया। इस स्थिति में उनके मन में जो तूफान उठ रहा होगा, उसका अनुमान किया जा सकता है। अतः यह स्थिति अधिक दिन नहीं चली। उन्होंने तो यह पाठ पढ़ा हुआ था कि मौन रहने से अच्छा सत्य बोलना होता है। ऐसा व्यक्ति कब तक चुप रह सकता था? कुछ दिन बाद एक घटना घटी। एक व्यक्ति उनके तम्बू के बाहर खड़ा होकर पुराणों की प्रशंसा करने लगा। उसने वेदों को पुराणों से हेय बताया। इस असत्य वचन को सुनकर स्वामी जी से रहा न गया और वह अपना मौन व्रत तोड़कर बाहर निकले और उस व्यक्ति के असत्य वाक्यों का खण्डन आरम्भ कर दिया। हो सकता है कि उस व्यक्ति ने यह कार्य ईश्वर की प्रेरणा से स्वामी जी का मौन व्रत भंग करने के लिए किया हो? जो भी रहा हो, यह अच्छा ही हुआ और अब स्वामीजी पूरे बल से वेद प्रचार करने लगे।

 अब स्वामी दयानन्द नगर-नगर और स्थान-स्थान में घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे। चारों वेदों का अध्ययन कर उन्होंने जाना था कि वेदों में कहीं मूर्तिपूजा का विधान व समर्थन नहीं है। उन्होंने मूर्तिपूजा और अन्य अवैदिक अन्धविश्वासों व पाखण्डों का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। बहुत से लोग उनके साथ शास्त्रार्थ करने आते परन्तु हार खाकर चले जाते। कर्णवास में पं. हीरावल्लभ नाम के एक बहुत बड़े विद्वान पण्डित थे। वह नौ और पण्डितों को अपने साथ लेकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आये। आते हुए साथ में एक पाषाण मूर्ति भी उठा लाये और प्रतिज्ञा की कि जब तक दयानन्द से इसकी पूजा न करा लूंगा, वापस न जाऊंगा। कोई एक सप्ताह तक प्रतिदिन ना-नौ घंटे तक शास्त्रार्थ हुआ करता था। दोनों ओर से संस्कृत बोली जाती थी और वाद प्रतिवाद होता था। अन्तिम दिन पण्डित जी उठे और ऊंचे स्वर से बोले--स्वामी दयानन्द जी महाराज जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य है। इतना कहकर उन्होंने अपनी मूर्तियां उठाई और गंगा में फेंक दीं। उनको देखकर बाकी पण्डितों और नगर-निवासियों ने भी अपनी-अपनी मूर्तियां घर से लाकर गंगा की भेंट कर दीं। हीरावल्लभजी ने मूर्तियों की जगह सिंहासन पर वेदों को प्रतिष्ठत कर दिया। इस कर्णवास के शास्त्रार्थ की सर्वत्र बड़ी धूम मची। बहुत से ठाकुर लोग स्वामी जी महाराज के पास आकर उपदेश लेने लगे। स्वामी जी ने उन्हें यज्ञोपवीत-जनेऊ देकर गायत्री मन्त्र को गुरु-मन्त्र के रूप में दिया। गंगा के किनारे भ्रमण करते हुए स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार गायत्री के उपदेश से सहस्त्रों स्त्री-पुरुषों को धर्म का अमृत पिलाकर उनका कल्याण किया।

 महर्षि दयानन्द ने देश से अज्ञान, अन्धविश्वास, कुरीतियां, परतन्त्रता, गोहत्या दूर करने, गोरक्षा का महत्व स्थापित करने, हिन्दी को अपनाने, विदेशी भाषाओं के अंधाधुन प्रयोग न करने सहित सामाजिक विषमा दूर करने, समाज सुधार व मानव जाति के हित के अनेकानेक कार्य किये और इनके लिए अपना एक-एक पल व एक-एक श्वांस व्यतीत किया। उनके जैसा महापुरूष इतिहास के पृष्ठों पर दूसरा देखने को नहीं मिलता जिसने देश व मानवता के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग किया हो। उनका बलिदान तो महत्व पूर्ण है ही परन्तु हमें लगता है कि उनका कार्य उनके बलिदान से भी अधिक महत्वूपर्ण है। उनके कार्य का किंचित परिचय देना ही आज के इस लेख का उद्देश्य है। आज के इस लेख में हमने महर्षि दयानन्द भक्त श्री सन्तराम जी के ऋषि जीवन से सहायता ली है। उनका आभार व्यक्त करते हैं। आशा है कि पाठक इस लेख को पसन्द करेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**